शोध संक्षिप्तिका

अतीत की गौरवोज्ज्वल आधारों से शक्ति संचित कर ही नवोन्मेषणात्मक काव्य का प्रस्फुरण होता है। समाज में श्रेष्ठ संस्कृति का अभिव्यंजक, पोषक, संरक्षक और दिशावाहक होता है। समरसता और समन्वय से ही समाज-संस्कृति-साहित्य पुष्पित-पल्लवित होते हैं।

समाज,संस्कृति और साहित्य को एकसूत्रता में बाँधने वाली प्रमुख शक्ति है परम्परा। परम्परा के माध्यम से ही इन तीनों के संबंधों की जटिलता की मीमांसा होती है। परम्परा कदाचित सामाजिक परिस्थितियों से निष्पक्ष नहीं रह सकती। वह पल्लवित होते हुए युगानुरूप सामाजिक और मानवीय मूल्यों पर हस्तक्षेप करती है। यदि परम्परा निरंतर प्रगतिशील और समाज सापेक्ष नहीं रहती तो जनमानस उसे बहिष्कृत कर विकास के नूतन पर्याय का अन्वेषण करता है। समय की क्रोड़ में अंतहीन परम्परा की थाती भारतीय संस्कृति और समाज के हर अणु में व्याप्त है। इस विशद् परिव्याप्तता का सुदृढ़ परिचायक हमारी कला, संस्कृति है जो चिर् पुरातन होकर भी नित्य नूतन है। संस्कृत साहित्य से प्रवाहित धाराएँ आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल से गुजरती हुई अद्यतन साहित्य को कभी प्रकट तो कभी गुप्त रूप से प्रभावित करती आई है।

आदिकालीन चर्यागीतों की भावपूर्ण धारा अपनी कलात्मक सौष्ठव और गीतात्मक अभिव्यंजना के साथ भक्तिकालीन काव्य को भी आप्लावित करती हुई आगे बढ़ी। आदिकालीन काव्य धारा के अनेक सूत्र सगुण साहित्य में परिलक्षित होती हैं। सन् 1907 ई. में नेपाल के राजकीय ग्रंथागार में हरप्रसाद शास्त्री द्वारा चर्यापदों को खोज निकालने के बाद साहित्य के क्षेत्र में एक नवीन आलोड़न की सृष्टि हुई। शास्त्री महोदय ने चर्यागीतों की भाषा पर बंगला भाषा की मुहर लगाई। परंतु राहुल सांकृत्यायन ने इसकी भाषा को पुरानी हिन्दुस्तानी कहा। इसी प्रकार एक भाषिक द्वंद्व में आबद्ध चर्यापदों के कथ्य का अर्थोद्धार न हो सका।

इधर हिन्दी साहित्य के कालविभाजन विषयक विवाद के चलते कई विद्वानों ने चर्यापदों को साहित्यिक काल सीमा से निष्कासित कर दिया था। परवर्ती शोधों के बाद कुछ विद्वानों ने सातवीं-आठवीं शताब्दी में रचित इन साहित्यिक कृतियों की भाषा को उत्तर अपभ्रंश या अवहट्ठ नाम दिया और यह घोषणा की कि उत्तर अपभ्रंश ही पुरानी हिन्दी है। तथ्य यह है कि किसी भी महान साहित्य का प्रभाव अपने परवर्ती युग में पड़ना एक स्वयंक्रिय कार्य-व्यापार है। अत: जब इस रूप में चर्यापदों का आकलन किया जाता है तो हम देखते हैं कि जैनों, नाथों के अलावा कबीर में विद्यमान खंडन-मंडन की तीव्र भाषा पर भी बौद्धों का स्पष्ट प्रभाव है। हिन्दी साहित्य की इन प्रवृत्तियों को देखने पर हमें पता चलेगा कि इस चिंतन का उत्स बौद्धों के साहित्य में विद्यमान हैं। अत: बौद्धों साहित्य को मात्र धार्मिक साहित्य कहकर छोड़ देना उचित न होगा। एतदर्थ साहित्य दृष्टि से बौद्धों पर शोध करना एक आवश्यक विषय है। हालांकि चर्यापदों पर कुछ काम अवश्य हुए पर उनका साहित्यिक मूल्यांकन अब तक सुचारु और विस्तृत रूप से न हो पाया था। इस अनुक्रम में प्रस्तुत शोध एक संक्षिप्त भूमिका निभाएगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध 'आदिकालीन चर्यापदों का परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव' छह अध्यायों में विभक्त है जिनमें चर्यापदों के परिचय के साथ हिन्दी साहित्य पर पड़े उसके सामग्रिक प्रभाव को दिखाने का प्रयास किया गया हैं।

प्रथम अध्याय 'चर्यापदों का परिचय' के अंतर्गत सर्वप्रथम 'चर्या' शब्द की व्युत्पत्ति विषयक चर्चा की गई। चर्या शब्द चर धातु से बना है जिसका अर्थ है चलना। अत: ऐसा देखा गया है कि यह चर्यापद पूर्ववर्ती साधकों द्वारा रचित एक आचार-संहिता की भाँति है, जो परवर्ती साधकों के लिए दिशाबोधक बन गया है। इसके पश्चात चर्यापदों का रचनाकाल, आविष्कार इत्यादि का सामग्रिक वर्णन किया गया है। दरअसल चर्यापदों के रचनाकार सिद्ध गण किसी एक काल विशेष से बद्ध नहीं थे बल्कि उनका समय सातवीं से नौवीं शताब्दी के बीच का था। इस

सुदीर्घ अंतराल में मूल चर्यागीतों की शब्दावली में कई हस्तक्षेप हुए होंगे, परंतु उस रूप को खोज पाना असंभव है। शोध से ज्ञात हुआ कि किसी लिपिकार ने चर्यागीत और उसकी टीका को दो अलग पुस्तकों से उतारा था। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में बौद्धों के विविध संप्रदायों का परिचय दिया गया है। तांत्रिक पद्धति में चर्यापदों का आकलन करते हुए चर्यापदों में संकेतित तांत्रिक आचारों को देखा गया। दरअसल क्रिया, योगाचार और अनुत्तर तंत्र के साधकों ने अन्य मतों की अपेक्षा अपने मत की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का प्रयास किया है। इस क्रम में उन्होंने बौद्ध एवं बौद्धेतर संप्रदायों पर कटाक्ष किया है। ऐसे गीतों में उलटबासियों का सुंदर संयोजन देखा जा सकता है। वहीं कुछ गीतों में शुद्ध रूप से क्रिया, योगाचार और अनुत्तर तंत्रों की साधनाओं का भी संगुंफन देखा जा सकता है। इसी आधार पर तांत्रिक पद्धति में चर्यापदों का आकलन किया गया है। बौद्ध पूर्व तंत्र की आवधारणा का विश्लेषण करते हुए तंत्र की लोकजीवन व वैदिक वाङ्मय से होते हुए बौद्धों में उसके प्रवेश के बाद, हिन्दुओं में फैले मातृसत्तात्मक शाक्त तंत्र, वैष्णव पांचरात्र और शैवों के विविध संप्रदायों की भी चर्चा की गई है। तदुपरांत गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ संप्रदाय के साथ सिद्धों का साम्य वैषम्य देखा गया है। उल्लेख्य है कि गोरख के गुरु पहले बौद्ध थे और वे अवलोकितेश्वर के अवतार माने जाते हैं। यहाँ तक कि मत्स्येन्द्र और गोरख की गणना चौरासी सिद्धों में भी की गई है।

सिद्धों की साधना पद्धति के अंतर्गत चर्या, क्रिया योगाचार और अनुत्तर तंत्र का परिचय और उनकी नाना विध् साधना पद्धतियों का वर्णन किया गया। आज सुधि समाज में प्रसिद्ध वज्रयान ही अनुत्तर तंत्र है। बाद में अनुत्तर तंत्र में प्रविष्ट भ्रष्ट साधकों के कारण ही बौद्धों का पतन हो गया।

चर्यापदों के महत्व का आकलन शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से किया गया है। चर्यापदों में व्याप्त कापालिक साधना के सूत्र और मुनिदत्त की टीका में निहित कापालिक साधना का भी

उल्लेख किया गया है। अंतत: चर्यापदों के रचनाकारों का परिचय दिया गया। हालांकि इनके विषय में ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ भी कह पाना असंभव है तथापि इनके साथ जुड़े मिथकों में ही इनका जीवन छिपा है।

द्वितीय अध्याय- 'चर्यापदों का साहित्यिक विवेचन' के अंतर्गत बौद्ध दर्शन का मूल उत्स, चर्यापदों का साहित्यिक विवेचन, चर्यापदों में निहित समाज चिंतन, बौद्ध तंत्र का दर्शन, रस विवेचन, प्रकृति वर्णन, भाषा, शब्द योजना, प्रतीकात्मकता, अलंकार योजना, छंद योजना, रागविचार जैसे बिन्दुओं पर चर्चा की गई।

बौद्धों के पहले चार्वाक, सांख्य जैसे निरीश्वरवादी दर्शन भी भारत में थे। संभवत: गौतम बुद्ध इन्हीं दर्शनों से प्रभावित हुए होंगे। उक्त दर्शनों में व्याप्त तीक्ष्ण व्यंग्य और युक्तियुक्त बातों का प्रभाव बौद्धों पर लक्षित किया जाता है। बुद्ध के निरीश्वरवादी सिद्धांत की व्याख्या करते हुए आर्य नागार्जुन द्वारा प्रतिपादित माध्यमिका योग और शून्यता की व्याख्या के क्रम में आए नैरात्म्य सिद्धांत का भी विश्लेषण किया गया है।

चर्यापदों में वर्णित समाज में दरिद्र समाज की निराशा, खाल बिखाला से भरे क्षेत्र, अस्पृश्य डोम्बी युवती, शुंडिनी की दुकान, मृतवत्सा स्त्री, शबर -शबरी का व्याभिचार सब कुछ समाहित हो गया है।

आगे बौद्ध तंत्र के दर्शन की विशद चर्चा करने के बाद यह तथ्य सामने आया कि बौद्धों में सहजयान नाम की कोई शाखा नहीं थी। केवल बंगाली सहजिया वैष्णवों से इनका संबंध स्थापित करने के उद्देश्य से कुछ विद्वानों ने पुस्तकों में इस नवीन यान को जन्म देकर मृत या लुप्त घोषित कर दिया है।

बौद्धों के अनुसार यह जगत अस्तित्वहीन है। इसी बात को केंद्र में रखकर चर्यापदों में वर्णित प्रकृति का विश्लेषण किया गया है। अब तक चर्यापदों की भाषा को संधा भाषा कहा गया था। मेरे शोध से यह ज्ञात हुआ कि चर्यापदों की भाषा प्रहेलिकामय है परन्तु संधा भाषा नहीं। चर्यापदों के केवल पद संख्या 28 में 'कापुर' शब्द का प्रयोग किया गया है, जो एक मात्र संधा शब्द है।

इसके अतिरिक्त शब्द योजना में चर्यापदों में आगत तत्सम तद्भव व देशज शब्दों को देखा गया है। सिद्धों द्वारा सृजित प्रतीकों का विश्लेषण करने के बाद उसका नाथों और कबीर तक पड़े प्रभाव का आकलन किया गया। अलंकार योजना और छंद योजना के अंतर्गत सिद्धों द्वारा अनायास प्रयुक्त अलंकारों और छांदसिक लालित्य की चर्चा की गई। अंतत: इनके रागों पर विचार किया गया। दरअसल सिद्धों के गीत लोकगीतों के अधिक करीब हैं। अत: आरंभ में इनका शास्त्रीय रागों से कोई सरोकार न रहा होगा परन्तु बाद में इन्हें शास्त्रीय रागों से संयुक्त किया गया होगा। यहाँ पितृ तंत्र और मातृ तंत्र के पार्थक्य पर भी सुविस्तृत रूप से विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय 'आदिकालीन साहित्य पर प्रभाव' के अंतर्गत आदिकालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है। इस क्रम में सिद्धों का नाथों और जैनों पर पड़े प्रभाव या अंतर्संबंधों को स्पष्ट किया गया है। उल्लेख्य है कि जैनों का विकास सिद्धों के समानांतर हुआ और नाथों का उदय सिद्धों की ढहती नींव का सहारा लेकर हुआ। अत: यह पाया गया कि इन दोनों बौद्धेतर संप्रदायों में भी लगभग बौद्धों द्वारा प्रयुक्त शब्दावली का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ

सिद्ध : मन्त ण तन्त ण धेउ ण धारण, सब्बहि रे बढ़ बिब्भम कारण।

जैन : मन्तु ण तन्तु ण धेउ ण धारणु, ण वि उच्छासइ किज्जुइ कारणु।

पाहुड़ दोहा और बौद्धों के दोहा कोशों में शब्दावली के साथ कथन भंगिमा का भी अद्‌भुत साम्य देखा गया है। सिद्धों के योगाचार तंत्र के दर्शन के साथ नाथ संप्रदाय का मेल है। अत: योगाचारी सिद्धों के साथ नाथ संप्रदाय के साहित्य की समानता भी देखी जा सकती है। सिद्धों से ही नाथों में भी उलटबासियों की परंपरा चली। सिद्धों द्वारा व्यवहृत अनेक प्रतीकों का साधर्म्यमूलक प्रयोग विशेषकर नाथों ने किया है। जैसे बौद्धों के 'खसम' को नाथों ने 'गगनोपम' कहा, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना को दोनों ने गंगा, यमुना और सरस्वती कहा है।

आगे अमीर खुसरो और विद्यापति पर पड़े बौद्ध प्रभाव पर भी चिंतन किया गया है। विशेषकर अमीर खुसरो पर बौद्ध प्रभाव का आकलन करना संभवपर प्रतीत नहीं होता परंतु एक बड़ा कवि अपने समसामयिक परिस्थितियों और साहित्य से तत्त्व संग्रह करता है। संभवत: इसी क्रम से उन्होंने बौद्धों के उलटबासियों के आधार पर पहेलियाँ रची होंगी। हालांकि इसे प्रभाव कहना खुसरो की प्रतिभा पर प्रश्नचिह्न लगाना होगा, तथापि प्रहेलिकामय काव्य सृजन के उत्स में बौद्धों को अवश्य ही रखा जा सकता है। उड़िसा में सहजिया वैष्णवों का उदय बौद्धों के महाबोधि संप्रदाय की नींव पर हुआ। जयदेव ने अपने राधा-कृष्ण के माध्यम से उसी संप्रदाय के दर्शन को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास किया था। इसी क्रम में 'अभिनव जयदेव' विद्यापति के गीतों को भी देखा जा सकता है। ऐसा लगता है मानों बौद्धों की शबरी, डोम्बी विद्यापति की राधा के रूप में विकसित हुईं।

इस अध्याय के निष्कर्ष स्वरूप यह ज्ञात हुआ कि आदिकालीन काव्यों पर बौद्ध प्रभाव निश्चित रूप से पड़ा है क्योंकि इस अवधि में जैनों और नाथों के समानांतर विकास के साथ अनुत्तर तंत्र के आधार पर उड़िया के आस-पास के क्षेत्रों में सहजिया वैष्णवों का उदय हुआ। जयदेव, चंडीदास, विद्यपति जैसे कवियों का उससे संलग्न होना इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि तत्कालीन समाज में बौद्धों का प्रभाव काफी था जिसने अज्ञात रूप में साहित्य को प्रभावित किया है।

चतुर्थ अध्याय 'भक्तिकालीन साहित्य पर प्रभाव' के अंश संभूत भक्तिकालीन पारिस्थितिक अवस्थाओं का ब्योरा प्रस्तुत करते हुए भक्त की धारा के विकास से संबद्ध तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। भक्तिकालीन काव्य पर पड़े बौद्ध प्रभाव का आकलन करते हुए भाव और कलापाक्षिक प्रभावों की चर्चा की गई। भावपरक पक्ष में वैष्णव पांचरात्र संहिताओं के चतुष्पाद- ज्ञानपाद, योगपाद, क्रियापाद और चर्यापाद की समानता बौद्ध क्रियातंत्र, चर्यातंत्र, योगाचारतंत्र और अनुत्तरतंत्र से देखी गई। चक्रधर विष्णु और वज्रधर बुद्ध के पूजनादिक की भी समानता दृष्टिगोचर हुई। देवता के आगमन-निगमन पर भी ध्यान दिया गया है। विशेषकर इस स्थान में राधा के विकास विषयक विस्तृत चर्चा भी की गई है।

कलापाक्षिक प्रभावों के अन्तर्गत मुक्तकों की परंपरा, सूर के कूटपदों के उत्स आदि विषयों पर भी चर्चा की गई। संभवत: सूर के कूटपदों की भंगिमा का विकास प्रहेलिकामय चर्यापदों से ही हुआ होगा, ऐसा मेरा अनुमान है। इस अध्याय से संपृक्त निष्कर्ष यह है कि बौद्ध साहित्य की धारा का प्रत्यक्ष और तीव्र प्रभाव निर्गुणवादी संतों विशेषकर कबीर पर पड़ा। कबीर की कथन भंगिमा उनके प्रतीक और शब्दावली पर पूर्ण रूप से बौद्ध प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। विशेष कर कबीर की खंडन-मंडन की प्रक्रिया और उलटबासियों पर बौद्धों का प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है। हालांकि अब तक यह माना जाता रहा है कि कबीर पर यह प्रभाव नाथों के माध्यम से आया है पर गौर से देखने से लगता है कि बनारसवासी कबीर और सारनाथ के बौद्ध श्रमणों के बीच अवश्य ही संबंध रहे होंगे। इस दृष्टि से देखने पर कबीर के व्यक्तित्व का एक अन्य लुप्त दिक् भी उन्मोचित होने की आशा की जा सकती है। सूफी प्रेम काव्य की उत्स भूमि भले ही ईरान के आस-पास के प्रांत रहे हो। पर उसे परिपक्क्वता भारत में मिली। सूफियों के अनलहक़ (मैं खुदा हूँ) की भावना का बौद्ध चर्यातंत्र के साथ अद्‌भुत साम्य देखा जा सकता है।

सगुणवादी वैष्णवों साहित्य के कृष्ण काव्य धारा में राधा के विकास पर और राम काव्य में रसिक संप्रदाय के उद्‌भव पर भी बौद्ध प्रभाव देखा जा सकता है। यहाँ तक कि तुलसी के रामचरित्र के गठन में भी त्रिकाय-बुद्ध की अवधारणा देखी जा सकती है। राम का निर्गुण स्वरूप बुद्ध की धर्मकाया, उनका अवतारी रूप बुद्ध की निर्माण काया और उनका महाविष्णुत्व रूप बुद्ध के संभोग काया का प्रतिरूप लगता है। भक्तिकाल में यह बौद्ध प्रभाव यह विशिष्ट रूप से उभरकर आया है।

पंचम अध्याय 'रीतिकालीन साहित्य पर प्रभाव' में रीतिकालीन परिस्थितियों का आकलन करते हुए इस साहित्य पर पड़े बौद्ध प्रभाव का विश्लेषण किया गया। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि रीतिकाल में बौद्ध प्रभाव तीव्र रूप में तो नहीं मिल पाता क्योंकि इस समय के कविगण राजाश्रय में रहते हुए सौन्दर्य और राजप्रशस्ति पर ही गीत रचने में व्यस्त थे। तथापि केशव, मतिराम, देव, सेनापति, बिहारी, घनानन्द, बोधा जैसे कवियों के वर्णन क्रम में चर्यापदों का प्रभाव देखा जा सकता है। केशव दास जैसे कवि में बौद्ध तंत्रों का प्रभाव पाया जाना अत्यन्त आश्चर्यकर विषय है। परंतु केशव कृत 'विज्ञानगीता' में यह प्रभाव विद्यमान है। उदाहरणार्थ

जो तू राधा कुंड की माटी मानत इष्ट।

तौ तू मेरो सिष्य है देखै बस्तु अदृष्ट॥

एक अद्‌भुत मंत्र तामहि साधत कोय।

जो त्रिकोटि जपै सुमंत्रहि नारियै तब होय॥

इन पंक्तियों में बौद्ध अनुत्तरतंत्र और हिन्दुओं की उत्तरकौलिक साधना के गुप्त बीज छिपे हैं। कवि मतिराम ने भी बौद्ध परिदृश्य में गृहित काम और वासना के पार्थक्य का वर्णन मिलता है। रीतिमुक्त कवि घनानंद, बोधा आदि के स्वच्छन्द प्रेमाभिव्यक्ति में भी यत्किंचित रूप

में बौद्धों के प्रेम का पर्यावसान नजर आता है। यहाँ तक कि बिहारी सतसई में भी चर्यापदों के भाव संगुंफित होते नजर आए हैं। आरंभ में यह सरसरी दृष्टि से देखने पर रीतिकालीन कविताओं में बौद्ध प्रभाव तो दृष्टिगत नहीं होता, परन्तु उनमें प्रतीकात्मक और काव्यिक रूप में अंतर्निहित भावों को देखने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

सम्भवत: बौद्धों का चिंतन व्यापक और सर्वभारतीय चिंतन के रूप में उभर चुका था। जिस कारण उनका दूरगामी प्रभाव परवर्ती साहित्य पर भी पड़ा है। उल्लेख्य है कि रीतिकालीन साहित्य में स्थान-स्थान पर बौद्धों के भावों का भी भावुक काव्यिक विकास नजर आता है। यह प्रभाव अनायास ही हिन्दी साहित्य में परिव्याप्त हो गया है। साथ ही रीतिकालीन नायिका भेद को देखें तो वहाँ भी बौद्धों की डोम्बी, मातंगी, सबरी, शुंडिनी के प्रभाव यत्किंचित रूप में नजर आते हैं। इसे प्रभाव की अपेक्षा विकास कहना श्रेयष्कर है क्योंकि साहित्य के क्षेत्र में भाव, भाषा और अभिव्यंजना का आदान-प्रदान एक स्वयंक्रिय कार्य-व्यापार है।

षष्ठ और अंतिम 'आधुनिक साहित्य पर प्रभाव' शीर्षक के अंतर्गत आधुनिक काल की विविध परिस्थितियों और वादों की चर्चा की गई है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी काव्य में बौद्धों दर्शन देखा जा सकता है। बौद्धों जिस प्रकार प्राणायाम की क्रियाओं का मानवीकरण किया, उसी प्रकार छायावादियों के प्रकृति चित्रण को लिया जा सकता है। बौद्धों ने समाज के उपेक्षित पात्रों को अपने काव्य-कर्म के अंगीभूत किया जिस कारण उन्हें प्रथम स्तर के प्रगतिवाद का पुरष्कर्ता माना जा सकता है। साथ ही अपने काव्यों में नव्य प्रयोग व प्रतीक योजना करने की दृष्टि से वे प्रयोगवादी ठहरते हैं। तथ्य यह है कि आदिकाल और आधुनिक काल के बीच एक सुदीर्घ अंतराल अवश्य है। परंतु आधुनिक काल में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भावना उभरी जिससे कि कवि और लेखकगण अपनी पुरातन संस्कृति की ओर मुड़े। एतदर्थ आधुनिक काल में यह लुप्त बौद्ध धारा स्पष्ट रूप से सामने उभरकर आई। इस काल

की कई रचनाएँ जैसे प्रसाद कृत 'कामायनी', निराला कृत 'राम की शक्ति पूजा', दिनकर कृत 'उर्वशी', बच्चन कृत 'मधुशाला' और अज्ञेय कृत 'असाध्य वीणा' पर बौद्ध प्रभाव देखे गए। कामायनी की श्रद्धा और इड़ा, बौद्धों की रूप काया और धर्म काया है। राम की शक्ति पूजा में राम के द्वारा की गई शक्ति की 'मौलिक कल्पना' में बौद्ध प्रभाव विद्यमान है। दिनकर के पुरुरवा की अवस्था शून्यता की उपलब्धि के बाद बौद्ध-साधक की अवस्था-सी है। उर्वशी के आगमन से वह विलासमय जीवन में पुन: प्रविष्ट हो तथागत बनता है। असाध्य वीणा का वज्रकीर्ति, किरीटि तरु स्वयं सिद्ध रूप से बौद्ध नाम है। असाध्य वीणा और चर्यापदों के हेरुक के वीणा में भी अथाह साम्य है और अंत: वहाँ महामौन की परिव्याप्ति भी बौद्ध विपासना के माध्यम से आगत मौन की ओर इंगित करता है।

आधुनिक काल में बौद्धों का जो प्रभाव लक्षित हुआ। उसके पीछे कारण यह था कि समग्र भारतीय मनीषा अपने विगत हिरण्याभ वैभव के प्रति जागरूक हुआ। जिसके चलते उन्होंने अपनी पुरातन संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने का भरपूर प्रयास किया।

अंतत: उपसंहार के अंतर्गत विविध कालों में पड़े बौद्ध प्रभाव की चर्चा करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया।

बौद्ध धर्म का आरंभ भारत में हुआ और भारत में ही यह लुप्तप्राय हो गया। परंतु इसके अवशेष और प्रभाव यत्किंचित रूप में इतस्तत: प्रसरित हो गए। इस बौद्ध प्रभाव पर विस्तृत विवेचन बौद्ध साहित्य व हिन्दी काव्य में अदृष्ट योगसूत्र को समझने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।